प्रकाशकीय

आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थाधिराज समयसार की आचार्य अमृतचन्द्र कृत आत्मख्याति टीका में सस्कृत भाषा के विविध छन्दो मे रचित २७८ कलश आये हैं, जो समयसार कलश के नाम से जाने जाते हैं। अध्यात्म अमृत से लबालब भरे वे कलश अध्यात्म प्रेमी मुमुक्षु समाज में इतने लोकप्रिय हुए कि उन पर स्वतत्र टीकाएँ लिखी गईं, जिनमें पाण्डे राजमलजी कृत चार सौ वर्ष पुरानी टीका प्रमुख है। इसके आधार पर ही कविवर बनारसीदासजी ने नाटक समयसार की रचना की है।

इस समसार कलश पद्यानुवाद मे डॉ भारिल्ल ने आत्मख्याति के उन्हीं कलशों का सरल, सुबोध और प्रवाहमयी पद्यानुवाद हिन्दी भाषा के विभिन्न छन्दों में प्रस्तुत किया है।

यह तो सर्वविदित ही है कि वे समयसार और टीकाओ का अनुशीलन

विषय-सूची

१	जीवाजीवाधिकार	७
२	कर्ताकर्माधिकार	२७
३	पुण्यपापाधिकार	५२
४	आस्रवाधिकार	५८
५	सवराधिकार	६४
६	निर्जराधिकार	६८
७	वधाधिकार	८०
८	मोक्षाधिकार	८८
९	सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार	९५
१०	परिशिष्ट	१२१

डॉ हुकमचन्द भारिल्ल के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

क्र.	प्रकाशन	मूल्य
०१	पण्डित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्त्व	२० ००
०२	समयसार अनुशीलन भाग - १	२० ००
०३	समयसार अनुशीलन भाग - २	२० ००
०४	समयसार अनुशीलन भाग - ३	२० ००
०५	समयसार अनुशीलन भाग - ४	२० ००
०६	समयसार अनुशीलन भाग - ५	२५ ००
०७	गोली का जवाब गाली से भी नहीं	२ ००
०८	परमभावप्रकाशक नयचक्र	२० ००
०९	बिखरे मोती	१६ ००
१०	सत्य की खोज	१६ ००
११	आत्मा ही है शरण	१५ ००
१२	चिन्तन की गहराईयाँ	२० ००
१३	सूक्ति सुधा	१८ ००
१४	तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	१५ ००
१५	बारह भावना एक अनुशीलन	१२ ००
१६	धर्म के दशलक्षण	१६ ००
१७	दृष्टि का विषय	१० ००
१८	क्रमबद्धपर्याय	८ ००
१९	वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	८ ००
२०	गागर मे सागर	७ ००
२१	आप कुछ भी कहो	६ ००
२२	पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	६ ००
२३	आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पच परमागम	५ ००
२४	युगपुरुष कानजीस्वामी	५ ००
२५	णमोकार महामत्र एक अनुशीलन	५ ००
२६	मैं कौन हूँ ?	४ ००
२७	निमित्तोपादान	३ ५०
२८	अहिंसा महावीर की दृष्टि में	३ ००
२९	मैं स्वय भगवान हूँ	३ ००
३०	रीति-नीति	३ ००
३१	शाकाहार	२ ५०
३२	तीर्थंकर भगवान महावीर	२ ५०

३३ चैतन्य चमत्कार ३४ गाम्मेटश्वर बाहुबली ३५ वीतरागी व्यक्तित्व भगवान महावीर, ३६ बारह भावना, ३७ कुन्दकुन्द शतक ३८ शुद्धात्म शतक ३९ समयसार पद्यानुवाद, ४० योगसार पद्यानुवाद ४१ अनेकान्त और स्याद्वाद, ४२ शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर ४३ सार समयसार, ४४ बालबोध पाठमाला भाग २ ४५ बालबोध पाठमाला भाग - ३ ४६ वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग - १ ४७ वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग २ ४८ वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग - ३ ४९ तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ ५० तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २ ५१ समयसार कलश पद्यानुवाद ५२ बिन्दु में सिन्धु।

समयसार कलश

पद्यानुवाद

जीवाजीवाधिकार

(दोहा)

निज अनुभूति से प्रगट, चित्स्वभाव चिद्रूप।
सकलज्ञेय ज्ञायक नमौ, समयसार सद्रूप।।१।।

(सोरठा)

देखे पर से भिन्न, अगणित गुणमय आतमा।
अनेकान्तमयमूर्ति, सदा प्रकाशित ही रहे।।२।

(रोला)

यद्यपि मैं तो शुद्धमात्र चैतन्यमूर्ति हूँ।
फिर भी परिणति मलिन हुई है मोहोदय से॥
परमविशुद्धि को पावे वह परिणति मेरी।
समयसार की आत्मख्याति नामक व्याख्या से॥३॥

उभयनयो मे जो विरोध है उसके नाशक।
स्याद्वादमय जिनवचनो मे जो रमते हैं॥
मोह वमन कर अनय-अखण्डित परमज्योतिमय।
स्वयं शीघ्र ही समयसार मे वे रमते हैं॥४॥

ज्यो दुर्बल को लाठी है हस्तावलम्ब त्यो।
उपयोगी व्यवहार सभी को अपरमपद में।।
पर उपयोगी नही रंच भी उन लोगो को।
जो रमते है परम-अर्थ चिन्मय चिद्घन मे।।५।।

(हरिगीत)

नियत है जो स्वयं के एकत्व मे नय शुद्ध से।
वह ज्ञान का घनपिण्ड पूरण पृथक् है परद्रव्य से।।
नवतत्त्व की संतति तज बस एक यह अपनाइये।
इस आतमा का दर्श दर्शन आतमा ही चाहिए।।६।।

निक्षेपो के चक्र विलय नय नही जनमते।
अर प्रमाण के भाव अस्त हो जाते भाई॥
अधिक कहे क्या द्वैतभाव भी भासित ना हो।
शुद्ध आतमा का अनुभव होने पर भाई॥९॥

(हरिगीत)

परभाव से जो भिन्न है अर आदि-अन्त विमुक्त है।
संकल्प और विकल्प के जंजाल से भी मुक्त है॥
जो एक है परिपूर्ण है – ऐसे निजात्मस्वभाव को।
करके प्रकाशित प्रगट होता है यहॉ यह शुद्धनय॥१०॥

पावे न जिसमे प्रतिष्ठा बस तैरते है बाह्य मे।
ये बद्धस्पृष्टादि सब जिसके न अन्तरभाव मे॥
जो है प्रकाशित चतुर्दिक उस एक आत्मस्वभाव का।
हे जगतजन ! तुम नित्य ही निर्मोह हो अनुभव करो॥११॥

(रोला)

अपने बल से मोह नाशकर भूत भविष्यत्।
वर्तमान के कर्मबंध से भिन्न लखे बुध॥
तो निज अनुभवगम्य आतमा सदा विराजित।
विरहित कर्मकलंकपंक से देव शाश्वत॥१२॥

शुद्धनयातम आतम की अनुभूति कही जो।
वह ही है ज्ञानानुभूति तुम यही जानकर॥
आतम में आतम को निश्चल थापित करके।
सर्व ओर से एक ज्ञानघन आतम निरखो॥१३॥

खारेपन से भरी हुई ज्यो नमक डली है।
ज्ञानभाव से भरा हुआ त्यो निज आतम है॥
अन्तर-बाहर प्रगट तेजमय सहज अनाकुल।
जो अखण्ड चिन्मय चिद्घन वह हमे प्राप्त हो॥१४॥

(हरिगीत)

है कामना यदि सिद्धि की ना चित्त को भरमाइये।
यह ज्ञान का घनपिण्ड चिन्मय आतमा अपनाइये॥
बस साध्य-साधक भाव से इस एक को ही ध्याइये।
अर आप भी पर्याय में परमातमा बन जाइये॥१५॥
मेचक कहा है आतमा दृग ज्ञान अर आचरण से।
यह एक निज परमातमा बस है अमेचक स्वयं से॥
परमाण से मेचक-अमेचक एक ही क्षण मे अहा।
यह अलौकिक मर्मभेदी वाक्य जिनवर ने कहा॥१६॥
आतमा है एक यद्यपि किन्तु नयव्यवहार से।
त्रैरूपता धारण करे सद्ज्ञानदर्शनचरण से॥

बस इसलिए मेचक कहा है आतमा जिनमार्ग मे।
अर इसे जाने बिन जगतजन ना लगे सन्मार्ग में।।१७।।
आतमा मेचक कहा है यद्यपि व्यवहार से।
किन्तु वह मेचक नही है अमेचक परमार्थ से।।
है प्रगट ज्ञायक ज्योतिमय वह एक है भूतार्थ से।
है शुद्ध एकाकार पर से भिन्न है परमार्थ से।।१८।।
मेचक अमेचक आतमा के चिन्तवन से लाभ क्या।
बस करो अब तो इन विकल्पो से तुम्हे है साध्य क्या।।
हो साध्यसिद्धि एक बस सद्ज्ञानदर्शनचरण से।
पथ अन्य कोई है नही जिससे बचे संसरण से।।१९।।

त्रैरूपता को प्राप्त है पर ना तजे एकत्व को।
यह शुद्ध निर्मल आत्मज्योति प्राप्त है जो स्वयं को।।
अनुभव करें हम सतत ही चैतन्यमय उस ज्योति का।
क्योकि उसके बिना जग मे साध्य की हो सिद्धि ना।।२०।।

(रोला)

जैसे भी हो स्वतः अन्य के उपदेशो से।
भेदज्ञानमूलक अविचल अनुभूति हुई हो।।
ज्ञेयो के अगणित प्रतिबिम्बो से वे ज्ञानी।
अरे निरन्तर दर्पणवत् रहते अविकारी।।२१।।

(हरिगीत)

आजन्म के इस मोह को हे जगतजन तुम छोड दो।
अर रसिकजन को जो रुचे उस ज्ञान के रस को चखो।।
तादात्म्य पर के साथ जिनका कभी भी होता नही।
अर स्वयं का ही स्वयं से अन्यत्व भी होता नही।।२२।।

निजतत्त्व का कौतूहली अर पडौसी बन देह का।
हे आत्मन्! जैसे बने अनुभव करो निजतत्त्व का।।
जब भिन्न पर से सुशोभित लख स्वयं को तब शीघ्र ही।
तुम छोड दोगे देह से एकत्व के इस मोह को।।२३।।

लोकमानस रूप से रवितेज अपने तेज से।
जो हरे निर्मल करे दशदिश कान्तिमय तनतेज से।।
जो दिव्यध्वनि से भव्यजन के कान मे अमृत भरे।
उन सहस अठ लक्षण सहित जिन-सूरि को वंदन करे।।२४।।
प्राकार से कवलित किया जिस नगर ने आकाश को।
अर गोल गहरी खाई से है पी लिया पाताल को।।
सब भूमितल को ग्रस लिया उपवनो के सौन्दर्य से।
अद्भुत् अनूपम अलग ही है वह नगर संसार से।।२५।।
गंभीर सागर के समान महान मानस मंग है।
नित्य निर्मल निर्विकारी सुव्यवस्थित अंग है।।

परभाव के परित्याग की दृष्टि पुरानी न पडे।
अर जबतलक हे आत्मन् वृत्ति न हो अतिबलवती।।
व्यतिरिक्त जो परभाव से वह आतमा अतिशीघ्र ही।
अनुभूति मे उतरा अरे चैतन्यमय वह स्वयं ही।।२९।।

सब ओर से चैतन्यमय निजभाव से भरपूर हूँ।
मै स्वयं ही इस लोक मे निजभाव का अनुभव करूँ।।
यह मोह मेरा कुछ नही चैतन्य का घनपिण्ड हूँ।
हूँ शुद्ध चिद्घन महानिधि मै स्वयं एक अखण्ड हूँ।।३०।।

बस इसतरह सब अन्यभावो से हुई जब भिन्नता।
तब स्वयं को उपयोग ने स्वयमेव ही धारण किया।।

प्रकटित हुआ परमार्थ अर दृग ज्ञान वृत परिणत हुआ।
तब आतमा के बाग मे आतम रमण करने लगा॥३१॥
सुख शान्तरस से लबालब यह ज्ञानसागर आतमा।
विभरम की चादर हटा सर्वांग परगट आतमा॥
हे भव्यजन! इस लोक के सब एकसाथ नहाइये।
अर इसे ही अपनाइये इसमे मगन हो जाइये॥३२॥

(सवैया इकतीसा)

जीव और अजीव के विवेक से है पुष्ट जो,
ऐसी दृष्टि द्वारा इस नाटक को देखता।

अन्य जो सभासद है उन्हे भी दिखाता और,
दुष्ट अष्ट कर्मों के बंधन को तोडता॥
जाने लोकालोक को पै निज में मगन रहे,
विकसित शुद्ध नित्य निज अवलोकता।
ऐसो ज्ञानवीर धीर मंग भरे मन मे,
स्वयं ही उदात्त और अनाकुल सुशोभता॥३३॥

(हरिगीत)

हे भव्यजन! क्या लाभ है इस व्यर्थ के बकवाद से।
अब तो रुको निज को लखो अध्यात्म के अभ्यास से॥
यदि अनवरत छहमास हो निज आतमा की साधना।
तो आतमा की प्राप्ति हो सन्देह इसमे रंच ना॥३४॥

चैतन्यशक्ति से रहित परभाव सब परिहार कर।
चैतन्यशक्ति से सहित निजभाव नित अवगाह कर।।
है श्रेष्ठतम जो विश्व मे सुन्दर सहज शुद्धात्मा।
अब उसी का अनुभव करो तुम स्वयं हे भव्यातमा।।३५।।

(दोहा)

चित् शक्ति सर्वस्व जिन केवल वे है जीव।
उन्हे छोडकर और सब पुद्गलमयी अजीव।।३६।।
वर्णादिक रागादि सब हैं आतम से भिन्न।
अन्तर्दृष्टि देखिये दिखे एक चैतन्य।।३७।।

जिस वस्तु से जो बने, वह हो वही न अन्य।
स्वर्णम्यान तो स्वर्ण है, असि है उससे अन्य।।३८।।

वर्णादिक जो भाव है, वे सब पुद्गल जन्य।
एक शुद्ध विज्ञानघन आतम इनसे भिन्न।।३९।।

कहने से घी का घडा, घडा न घीमय होय।
कहने से वर्णादिमय जीव न तन्मय होय।।४०।।

स्वानुभूति मे जो प्रगट, अचल अनादि अनन्त।
स्वयं जीव चैतन्यमय, जगमगात अत्यन्त।।४१।।

(सवैया इकतीसा)

मूर्तिक अमूर्तिक अजीव द्रव्य दो प्रकार,
इसलिए अमूर्तिक लक्षण न बन सके।
सोचकर विचारकर भलीभांति ज्ञानियों ने,
कहा वह निर्दोष लक्षण जो बन सके।
अतिव्याप्ति अव्याप्ति दोषो से विरहित,
चैतन्यमय उपयोग लक्षण है जीव का।
अतः अवलम्ब लो अविलम्ब इसका ही,
क्योंकि यह भाव ही है जीवन इस जीव का ।।४२।।

(हरिगीत)

निज लक्षणो की भिन्नता से जीव और अजीव को।
जब स्वयं से ही ज्ञानिजन भिन्न-भिन्न ही है जानते॥
जग मे पडे अज्ञानियों का अमर्यादित मोह यह।
अरे तब भी नाचता क्यों खेद है आश्चर्य है॥४३॥

अरे काल अनादि से अविवेक के इस नृत्य मे।
बस एक पुद्गल नाचता चेतन नही इस कृत्य मे॥
यह जीव तो पुद्गलमयी रागादि से भी भिन्न है।
आनन्दमय चिद्भाव तो दृगज्ञानमय चैतन्य है॥४४॥

जब इसतरह धाराप्रवाही ज्ञान का आरा चला।
तब जीव और अजीव में अतिविकट विघटन हो चला॥
अब जबतलक हो भिन्न जीव-अजीव उसके पूर्व ही।
यह ज्ञान का घनपिण्ड निज ज्ञायक प्रकाशित हो उठा॥४५॥

कर्त्ताकर्माधिकार

(हरिगीत)

मैं एक कर्ता आत्मा क्रोधादि मेरे कर्म सब।
है यही कर्ताकर्म की यह प्रवृत्ति अज्ञानमय॥
शमन करती इसे प्रगटी सर्व विश्व विकाशनी।
अतिधीर परमोदात्त पावन ज्ञानज्योति प्रकाशनी॥४६॥

परपरिणति को छोडती अर तोडती सब भेदभ्रम।
यह अखण्ड प्रचण्ड प्रगटित हुई पावन ज्योति जब।।
अज्ञानमय इस प्रवृत्ति को है कहाँ अवकाश तब।
अर किसतरह हो कर्मबंधन जगी जगमग ज्योति जब।।४७।।

(सवैया इकतीसा)

इसप्रकार जान भिन्नता विभावभाव की,
कर्तृत्व का अहं विलायमान हो रहा।
निज विज्ञानघनभाव गजारूढ हो,
निज भगवान शोभायमान हो रहा।।

जगत का साक्षी पुरुषपुराण यह,
अपने स्वभाव मे विकासमान हो रहा।
अहो सद्ज्ञानवंत दृष्टिवंत यह पुमान,
जग-मग ज्योतिमय प्रकाशमान हो रहा।।४८।।
तत्स्वरूप भाव मे ही व्याप्य-व्यापक बने,
बने न कदापि वह अतत्स्वरूप भाव मे।।
कर्त्ता-कर्म भाव का बनना असंभव है,
व्याप्य-व्यापकभाव संबंध के अभाव मे।
इस भांति प्रबल विवेक दिनकर से ही,
भेद अंधकार लीन निज ज्ञानभाव मे।

कर्त्तृत्व भार से शून्य शोभायमान,
पूर्ण निर्भार मगन आनन्द स्वभाव में ॥४९॥
निजपरपरिणति जानकार जीव यह,
परपरिणति को करता कभी नही।
निजपरपरिणति अजानकार पुद्गल,
परपरिणति को करता कभी नही॥
नित्य अत्यन्त भेद जीव-पुद्गल में,
करता-करमभाव उनमे बने नही,
ऐसो भेदज्ञान जबतक प्रगटे नहीं,
करता-करम की प्रवृत्ती मिटे नहीं॥५०॥

(हरिगीत)

कर्ता वही जो परिणमे परिणाम ही बस कर्म है।
है परिणति ही क्रिया बस तीनो अभिन्न अखण्ड हैं।।५१।।

अनेक होकर एक है हो परिणमित बस एक ही।
परिणाम हो बस एक का हो परिणति बस एक की।।५२।।

परिणाम दो का एक ना मिलकर नहीं दो परिणमे।
परिणति दो की एक ना बस क्योकि दोनो भिन्न है।।५३।।

कर्ता नही दो एक के हों एक के दो कर्म ना।
ना दो क्रियाये एक की हों क्योकि एक अनेक ना।।५४।।

'पर को करूं मैं'– यह अहं अत्यन्त ही दुर्वार है।
यह है अखण्ड अनादि से जीवन हुआ दुःस्वार है॥
भूतार्थनय के ग्रहण से यदि प्रलय को यह प्राप्त हो।
तो ज्ञान के घनपिण्ड आतम को कभी न बंध हो॥५५॥

(दोहा)

परभावो को पर करे आतम आतमभाव।
आप आपके भाव है पर के है परभाव॥५६॥

(कुण्डलिया)

नाज सम्मिलित घास को, ज्यों खावे गजराज।
भिन्न स्वाद जाने नही, समझे मीठी घास॥

समझे मीठी घास नाज को न पहिचाने।
त्यो अज्ञानी जीव निजातम स्वाद न जाने।।
पुण्य-पाप मे धार एकता शून्य हिया है।
अरे शिखरणी पी मानो गो दूध पिया है।।५७।।

(हरिगीत)

अज्ञान से ही भागते मृग रेत को जल मानकर।
अज्ञान से ही डरे तम मे रस्सी विषधर मानकर।।
ज्ञानमय है जीव पर अज्ञान के कारण अहो।
वातोद्वेलित उदधिवत कर्ता बने आकुलित हो।।५८।।
दूध जल मे भेद जाने ज्ञान से बस हंस ज्यो।
सद्ज्ञान से अपना-पराया भेद जाने जीव त्यो।।

जानता तो है सभी करता नही कुछ आतमा।
चैतन्य मे आरूढ नित ही यह अचल परमातमा।।५९।।

(आडिल्ल छन्द)

उष्णोदक मे उष्णता है अग्नि की।
और शीतलता सहज ही नीर की।।
व्यंजनो मे है नमक का क्षारपन।
ज्ञान ही यह जानता है विज्ञजन।।
क्रोधादिक के कर्तापन को छेदता।
अहंबुद्धि के मिथ्यातम को भेदता।।
इसी ज्ञान मे प्रगटे निज शुद्धात्मा।
अपने रस से भरा हुआ यह आतमा।।६०।।

(सोरठा)

करे निजातम भाव, ज्ञान और अज्ञानमय।
करे न पर के भाव, ज्ञानस्वभावी आतमा ॥६१॥

ज्ञानस्वभावी जीव, करे ज्ञान से भिन्न क्या ?
कर्ता पर का जीव, जगतजनों का मोह यह ॥६२॥

(दोहा)

यदि पुद्गलमय कर्म को करे न चेतनराय।
कौन करे – अब यह कहें सुनो भरम नश जाय ॥६३॥

(हरिगीत)

सब पुद्गलो मे है स्वभाविक परिणमन की शक्ति जब।
और उनके परिणमन मे है न कोई विघ्न जब॥
क्यो न हो तब स्वयं कर्ता स्वयं के परिणमन का।
अर सहज ही यह नियम जानो वस्तु के परिणमन का॥६४॥

आत्मा मे है स्वभाविक परिणमन की शक्ति जब।
और उसके परिणमन मे है न कोई विघ्न जब॥
क्यो न हो तब स्वयं कर्ता स्वयं के परिणमन का।
अर सहज ही यह नियम जानो वस्तु के परिणमन का॥६५॥

(रोला)

ज्ञानी के सब भाव शुभाशुभ ज्ञानमयी है।
अज्ञानी के वही भाव अज्ञानमयी हैं।।
ज्ञानी और अज्ञानी मे यह अन्तर क्यो है।
तथा शुभाशुभ भावो मे भी अन्तर क्यो है।।६६।।

ज्ञानी के सब भाव ज्ञान से बने हुए है।
अज्ञानी के सभी भाव अज्ञानमयी है।।
उपादान के ही समान कारज होते है।
जौ बौने पर जौ ही तो पैदा होते है।।६७।।

(दोहा)

अज्ञानी अज्ञानमय भावभूमि में व्याप्त।

इसकारण द्रवबंध के हेतुपने को प्राप्त ।।६८।।

(सोरठा)

जो निवसे निज माहि छोड सभी नय पक्ष को।

करे सुधारस पान निर्विकल्प चित शान्त हो ।।६९।।

(रोला)

एक कहे ना बंधा दूसरा कहे बंधा है,

किन्तु यह तो उभयनयो का पक्षपात है।

पक्षपात से रहित तत्त्ववेदी जो जन है,
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है ।।७०।।

एक कहे ना मूढ दूसरा कहे मूढ है,
किन्तु यह तो उभयनयो का पक्षपात है।
पक्षपात से रहित तत्त्ववेदी जो जन है,
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है ।।७१।।

एक कहे ना रक्त दूसरा कहे रक्त है,
किन्तु यह तो उभयनयो का पक्षपात है।
पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन है,
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है ।।७२।।

एक कहे ना दुष्ट दूसरा कहे दुष्ट हैं,
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।
पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन हैं,
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।७३।।
एक अकर्ता कहे दूसरा कर्ता कहता,
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।
पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन हैं,
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।७४।।
एक अभोक्ता कहे दूसरा भोक्ता कहता,
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।

पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन हैं,

उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है ॥७५॥

एक कहे ना जीव दूसरा कहे जीव है,

किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।

पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन हैं,

उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है ॥७६॥

एक कहे ना सूक्ष्म दूसरा कहे सूक्ष्म है,

किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।

पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन हैं,

उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है ॥७७॥

एक कहे ना हेतु दूसरा कहे हेतु है.

किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।

पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन हैं.

उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है ।।७८।।

एक कहे ना कार्य दूसरा कहे कार्य है.

किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।

पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन है.

उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है ।।७९।।

एक कहे ना भाव दूसरा कहे भाव है.

किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।

पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन हैं,
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है ।।८०।।
एक कहे ना एक दूसरा कहे एक है,
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।
पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन है,
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है ।।८१।।
एक कहे ना सान्त दूसरा कहे सान्त है,
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।
पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन हैं,
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है ।।८२।।

एक कहे ना नित्य दूसरा कहे नित्य है,

किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।

पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन है,

उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।८३।।

एक कहे ना वाच्य दूसरा कहे वाच्य है,

किन्तु यह तो उभयनयो का पक्षपात है।

पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन है,

उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।८४।।

नाना कहता एक दूसरा कहे अनाना,

किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।

पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन है,
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है ।।८५।।
एक कहे ना चेत्य दूसरा कहे चेत्य है,
किन्तु यह तो उभयनयो का पक्षपात है।
पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन है,
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है ।।८६।।
एक कहे ना दृश्य दूसरा कहे दृश्य है,
किन्तु यह तो उभयनयो का पक्षपात है।
पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन है,
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है ।।८७।।

एक कहे ना वेद्य दूसरा कहे वेद्य है,
किन्तु यह तो उभयनयो का पक्षपात है।
पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन है,
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है॥८८॥

एक कहे ना भात दूसरा कहे भात है,
किन्तु यह तो उभयनयो का पक्षपात है।
पक्षपात से रहित तत्ववेदी जो जन है,
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है॥८९॥

(हरिगीत)

उठ रहा जिसमें है अनन्ते विकल्पों का जाल है।
वह वृहद् नयपक्षकक्षा विकट है विकराल है॥
उल्लंघन कर उसे वुध अनुभूतिमय निजभाव को।
हो प्राप्त अन्तर्बाह्य से ममरमी एक स्वभाव को॥९०॥

(दोहा)

इन्द्रजाल से स्फुरं, सव विकल्प के पुंज।
जो क्षणभर मे लय करे, मैं हूँ वह चित्पुंज॥९१॥

(रोला)

मैं हूँ वह चित्पुंज कि भावाभावभावमय।
परमारथ से एक सदा अविचल स्वभावमय ।।
कर्मजनित यह बंधपद्धति करूँ पार मैं।
नित अनुभव यह करूँ कि चिन्मय समयसार मैं ।।९२।।

(हरिगीत)

यह पुण्य पुरुष पुराण सब नयपक्ष बिन भगवान है।
यह अचल है अविकल्प है सब यही दर्शन ज्ञान है ।।
निभृतजनो का स्वाद्य है अर जो समय का सार है।
जो भी हो वह एक ही अनुभूति का आधार है ।।९३।।

निज औघ से च्युत जिसतरह जल ढालवाले मार्ग से।
बलपूर्वक यदि मोड दे तो आ मिले निज औघ से।।
उस ही तरह यदि मोड दे बलपूर्वक निजभाव को।
निजभाव से च्युत आत्मा निजभाव मे ही आ मिले।।९४।।

(रोला)

है विकल्प ही कर्म विकल्पक कर्ता होवे।
जो विकल्प को करे वही तो कर्ता होवे।।
नित अज्ञानी जीव विकल्पो मे ही होवे।
इस विधि कर्ताकर्मभाव का नाश न होवे।।९५।।

जो करता है वह केवल कर्ता ही होवे।

जो जाने बस वह केवल ज्ञाता ही होवे।।

जो करता वह नही जानता कुछ भी भाई।

जो जाने वह करे नही कुछ भी हे भाई।।१६।।

करने रूप क्रिया मे जानन भासित ना हो।

जानन रूप क्रिया में करना भासित ना हो।।

इसीलिए तो जानन-करना भिन्न-भिन्न है।

इसीलिए तो ज्ञाता-कर्ता भिन्न-भिन्न हैं।।१७।।

(हरिगीत)

करम में कर्ता नहीं है अर कर्म कर्ता मे नही।
इसलिए कर्ताकर्म की थिति भी कभी वनती नही ।।
कर्म मे है कर्म ज्ञाता में रहा ज्ञाता सदा।
यदि साफ है यह बात तो फिर मोह है क्यों नाचता ?।।९८।।

(सवैया इकतीसा)

जगमग जगमग जली ज्ञानज्योति जव,
अति गंभीर चित् शक्तियो के भार से ।।
अद्भुत अनूपम अचल अभेद ज्योति,
व्यक्त धीर-वीर निर्मल आर-पार से ।।

तब कर्म कर्म अर कर्ता कर्ता न रहा।
ज्ञान ज्ञानरूप हुआ आनन्द अपार से।।
और पुद्गलमयी कर्म कर्मरूप हुआ,
ज्ञानी पार हुए भवसागर अपार से।।९९।।

पुण्यपापाधिकार

(हरिगीत)

शुभ अर अशुभ के भेद से जो दोपने को प्राप्त हो।
वह कर्म भी जिसके उदय से एकता को प्राप्त हो।।
जब मोहरज का नाश कर सम्यक् सहित वह स्वयं ही।
जग मे उदय को प्राप्त हो वह सुधानिर्झर ज्ञान ही।।१००।।

अरे पुण्य अर पाप कर्म का हेतु एक है।
आश्रय अनुभव अर स्वभाव भी सदा एक है।।
अत: कर्म को एक मानना ही अभीष्ट है।
भले-बुरे का भेद जानना ठीक नही है।।१०२।।

(दोहा)

जिनवाणी का मर्म यह बंध करे सब कर्म।
मुक्तिहेतु बस एक ही आत्मज्ञानमय धर्म।।१०३।।

(रोला)

सभी शुभाशुभभावो के निषेध होने से।
अशरण होगे नही रमेंगे निज स्वभाव में।।

अरे मुनीश्वर तो निशदिन निज मे ही रहते।
निजानन्द के परमामृत में ही नित रमते।।१०४।।
ज्ञानरूप ध्रुव अचल आतमा का ही अनुभव।
मोक्षरूप है स्वयं अतः वह मोक्षहेतु है।।
शेष भाव सब बंधरूप है बंधहेतु है।
इसीलिए तो अनुभव करने का विधान है।।१०५।।

(दोहा)

ज्ञानभाव का परिणमन ज्ञानभावमय होय।
एकद्रव्यस्वभाव यह हेतु मुक्ति का होय।।१०६।।

कर्मभाव का परिणमन ज्ञानरूप ना होय।
द्रव्यान्तरस्वभाव यह इससे मुकति न होय।।१०७।।
बंधस्वरूपी कर्म यह शिवमग रोकनहार।
इसीलिए अध्यात्म मे है निषिद्ध शतवार।।१०८।।

(हरिगीत)

त्याज्य ही है जब मुमुक्षु के लिए सब कर्म ये।
तब पुण्य एवं पाप की यह बात करनी किसलिए।।
निज आतमा के लक्ष्य से जब परिणमन हो जायगा।
निष्कर्म मे ही रस जगे तब ज्ञान दौडा आयगा।।१०९।।
यह कर्मविरति जबतलक ना पूर्णता को प्राप्त हो।
हॉ, तबतलक यह कर्मधारा ज्ञानधारा साथ हो।।

अवरोध इसमे है नही पर कर्मधारा बंधमय।
मुक्तिमारग एक ही है, ज्ञानधारा मुक्तिमय॥११०॥
कर्मनय के पक्षपाती ज्ञान से अनभिज्ञ हो।
ज्ञाननय के पक्षपाती आलसी स्वच्छन्द हो॥
जो ज्ञानमय हों परिणमित परमाद के वश मे न हो॥
कर्म विरहित जीव वे संसार-सागर पार हो॥१११॥
जग शुभ अशुभ मे भेद माने मोह मदिरापान से।
पर भेद इनमे है नही जाना है सम्यग्ज्ञान से॥
यह ज्ञानज्योति तमविरोधी खेले केवलज्ञान से।
जयवंत हो इस जगत मे जगमगै आतमज्ञान से॥११२॥

आस्त्रवाधिकार

(हरिगीत)

सारे जगत को मथ रहा उन्मत्त आस्रवभाव यह।
समरागण मे समागत मदमत्त आस्रवभाव यह॥
मर्दन किया रणभूमि मे इस भाव को जिस ज्ञान ने।
वह धीर है गंभीर है हम रमे नित उस ज्ञान मे॥११३॥

इन द्रव्य कर्मों के पहाडो के निरोधक भाव जो।
है राग-द्वेष-विमोह बिन सद्ज्ञान निर्मित भाव जो॥
भावास्रवो से रहित वे इस जीव के निजभाव है।
वे ज्ञानमय शुद्धात्ममय निज आत्मा के भाव है॥११४॥

(दोहा)

द्रव्यास्रव से भिन्न है भावास्रव को नाश।
सदा ज्ञानमय निरास्रव ज्ञायकभाव प्रकाश॥११५॥

(कुण्डलिया)

स्वयं सहज परिणाम से कर दीना परित्याग।
सम्यग्ज्ञानी जीव ने बुद्धिपूर्वक राग॥
बुद्धिपूर्वक राग त्याग दीना है जिसने।
और अबुद्धिक राग त्याग करने को जिसने॥
निजशक्तिस्पर्श प्राप्त कर पूर्णभाव को।
रहे निरास्रव सदा उखाडे परपरिणति को॥११६॥

(दोहा)

राग-द्वेष अर मोह ही केवल बंधकभाव।
ज्ञानी के ये है नही तातै बंध अभाव॥११९॥

(हरिगीत)

सदा उद्धत चिह्न वाले शुद्धनय अभ्यास से।
निज आत्म की एकाग्रता के ही सतत् अभ्यास से॥
रागादि विरहित चित्तवाले आत्मकेन्द्रित ज्ञानिजन।
बंधविरहित अर अखण्डित आत्मा को देखते॥१२०॥

च्युत हुए जो शुद्धनय से बोध विरहित जीव वे।
पहले बंधे द्रव्यकर्म से रागादि मे उपयुक्त हो॥
अरे विचित्र विकल्प वाले और विविध प्रकार के।
विपरीतता से भरे विध-विध कर्म का बंधन करे॥१२१॥

इस कथन का है सार यह कि शुद्धनय उपादेय है।
अर शुद्धनय द्वारा निरूपित आत्मा ही ध्येय है॥
क्योकि इसके त्याग से ही बंध और अशान्ति है।
इसके ग्रहण मे आत्मा की मुक्ति एवं शान्ति है॥१२२॥

धीर और उदार महिमायुत अनादि-अनंत जो।
उस ज्ञान मे थिरता करे अर कर्मनाशक भाव जो।।
सद्ज्ञानियो को कभी भी वह शुद्धनय ना हेय है।
विज्ञानघन इक अचल आतम ज्ञानियों का ज्ञेय है।।१२३।।

निज आतमा जो परमवस्तु उसे जो पहिचानते।
अर उसी में जो नित रमें अर उसे ही जो जानते।।
वे आस्रवो का नाश कर नित रहें आतम ध्यान मे।
वे रहे निज में किन्तु लोकालोक उनके ज्ञान मे।।१२४।।

संवराधिकार

(हरिगीत)

संवरजयी मदमत्त आस्रवभाव का अपलाप कर।
व्यावृत्य हो पररूप से सद्बोध संवर भास्कर॥
प्रगटा परम आनन्दमय निज आत्म के आधार से।
सद्ज्ञानमय उज्ज्वल धवल परिपूर्ण निजरसभार से॥१२५॥
यह ज्ञान है चिद्रूप किन्तु राग तो जडरूप है।
मै ज्ञानमय आनन्दमय पर राग तो पररूप है॥
इसतरह के अभ्यास से जब भेदज्ञान उदित हुआ।
आनन्दमय रसपान से तब मनोभाव मुदित हुआ॥१२६॥

(रोला)

भेदज्ञान के इस अविरल धारा प्रवाह से।
कैसे भी कर प्राप्त करे जो शुद्धातम को॥
और निरन्तर उसमे ही थिर होता जावे।
पर परिणति को त्याग निरंतर शुध हो जावे॥१२७॥

भेदज्ञान की शक्ति से निजमहिमा रत को।
शुद्धतत्त्व की उपलब्धि निश्चित हो जावे॥
शुद्धतत्त्व की उपलब्धि होने पर उसके।
अतिशीघ्र ही सब कर्मो का क्षय हो जावे॥१२८॥

आत्मतत्त्व की उपलब्धि हो भेदज्ञान से।
आत्मतत्त्व की उपलब्धि से संवर होता॥
इसीलिए तो सच्चे दिल से नितप्रति करना।
अरे भव्यजन! भव्यभावना भेदज्ञान की॥१२९॥

अरे भव्यजन! भव्यभावना भेदज्ञान की।
सच्चे मन से बिन विराम के तबतक भाना॥
जबतक पर से हो विरक्त यह ज्ञान ज्ञान मे।
ही थिर न हो जाय अधिक क्या कहे जिनेश्वर॥१३०॥

अबतक जो भी हुए सिद्ध या आगे होगे।
महिमा जानो एक मात्र सब भेदज्ञान की॥
और जीव जो भटक रहे है भवसागर मे।
भेदज्ञान के ही अभाव से भटक रहे है॥१३१॥

भेदज्ञान से शुद्धतत्त्व की उपलब्धि हो।
शुद्धतत्त्व की उपलब्धि से रागनाश हो॥
रागनाश से कर्मनाश अर कर्मनाश से।
ज्ञान ज्ञान मे थिर होकर शाश्वत हो जावे॥१३२॥

(दोहा)

बंधे न ज्ञानी कर्म से, बल विराग अर ज्ञान।
यद्यवि सेवे विषय को, तदपि असेवक जान ॥१३५॥

(हरिगीत)

निजभाव को निज जान अपनापन करें जो आतमा।
परभाव से हो भिन्न नित निज मे रमे जो आतमा॥
वे आतमा सद्दृष्टि उनके ज्ञान अर वैराग्य बल।
हो नियम से—यह जानिये पहिचानिये निज आत्मबल ॥१३६॥

मै स्वयं सम्यग्दृष्टि हूँ हूँ बंध से विरहित सदा।
यह मानकर अभिमान मे पुलकित वदन मस्तक उठा ।।
जो समिति आलंबे महाव्रत आचरे पर पापमय।
दिग्मूढ जीवो का अरे जीवन नही अध्यात्ममय।।१३७।।

अपदपद मे मत्त नित अन्धे जगत के प्राणियो।
यह पद तुम्हारा पद नही निज जानकर क्यो सो रहे।।
जागो इधर आओ रहो नित मगन परमानन्द मे।
हो परमपदमय तुम स्वयं तुम स्वयं हो चैतन्यमय।।१३८।।

अरे जिसके सामने हो सभी पद भासित अपद।
सब आपदाओ से रहित आराध्य है वह ज्ञान पद।।१३९।।

उस ज्ञान के आस्वाद में ही नित रमे जो आतमा।
अर द्वन्दमय आस्वाद मे असमर्थ है जो आतमा।।
आत्मानुभव के स्वाद मे ही मगन है जो आतमा।
सामान्य मे एकत्व को धारण करे वह आतमा।।१४०।।
सब भाव पी संवेदनाएँ मत्त होकर स्वयं ही।
हो उछलती जिस भाव मे अद्भुतनिधि वह आतमा।।
भगवान वह चैतन्य रत्नाकर सदा ही एक है।
फिर भी अनेकाकार होकर स्वयं मे ही उछलता।।१४१।।
पंचाग्नि तप या महाव्रत कुछ भी करो सिद्धि नहीं।
जाने बिना निज आतमा जिनवर कहें सब व्यर्थ हैं।।

मोक्षमय जो ज्ञानपद वह ज्ञान से ही प्राप्त हो।
निज ज्ञान गुण के बिना उसको कोई पा सकता नहीं।।१४२।।

(दोहा)

क्रियाकाण्ड से ना मिले, यह आतम अभिराम।
ज्ञानकला से सहज ही सुलभ आतमाराम।।
अतः जगत के प्राणियो! छोड जगत की आश।
ज्ञानकला का ही अरे! करो नित्य अभ्यास।।१४३।।
अचित्यशक्ति धारक अरे चिन्तामणि चैतन्य।
सिद्धारथ यह आतमा ही है कोई न अन्य।।

सभी प्रयोजन सिद्ध है फिर क्यो पर की आश।
ज्ञानी जाने यह रहस करे न पर की आश॥१४४॥

(सोरठा)

सभी परिग्रह त्याग इसप्रकार सामान्य से।
विविध वस्तु परित्याग अब आगे विस्तार मे॥१४५॥

(दोहा)

होंय कर्म के उदय से, ज्ञानी के जो भोग।
परिग्रहत्व पावे नहीं, क्योंकि रागवियोग॥१४६॥

(हरिगीत)

हम जिन्हे चाहे अरे उनका भोग हो सकता नही।
क्योकि पल-पल प्रलय पावे वेद्य-वेदक भाव सब।।
बस इसलिए सबके प्रति अति ही विरक्त रहे सदा।
चाहे न कुछ भी जगत मे निजतत्त्वविद विद्वानजन।।१४७।।

जबतक कषायित न करे सर्वांग फिटकरि आदि से।
तबतलक सूती वस्त्र पर सर्वांग रंग चढता नही।।
बस उसतरह ही रागरस से रिक्त सम्यग्ज्ञानिजन।
सब कर्म करते पर परीग्रहभाव को ना प्राप्त हो।।१४८।।

रागरस से रहित ज्ञानी जीव इस भूलोक में।
कर्मस्थ हों पर कर्मरज से लिप्त होते हैं नहीं॥१४९॥
स्वयं ही हों परिणमित स्वाधीन हैं सब वस्तुयें।
अर अन्य के द्वारा कभी वे नहीं बदली जा सके॥
जिम परजनित अपराध से बंधते नहीं जन जगत मे।
तिम भोग भोगें किन्तु ज्ञानीजन कभी बंधते नहीं॥१५०॥
कर्म करना ज्ञानियो को उचित हो सकता नहीं।
फिर भी भोगासक्त जो दुर्भुक्त ही वे जानिये॥
हो भोगने से बंध ना पर भोगने के भाव से।
तो बंध है बस इसलिए निज आतमा मे रत रहो॥१५१॥

तू भोग मुझको ना कहे यह कर्म निज करतार को।
फलाभिलाषी जीव ही नित कर्मफल को भोगता।।
फलाभिलाषाविरत मुनिजन ज्ञानमय वर्तन करे।
सब कर्म करते हुए भी वे कर्मबंधन ना करे।।१५२।।
जिसे फल की चाह ना वह करे – यह जंचता नही।
यदि विवशता वश आ पडे तो बात ही कुछ और है।।
अकंप ज्ञानस्वभाव मे थिर रहे जो वे ज्ञानिजन।
सब कर्म करते या नही – यह कौन जाने विज्ञजन।।१५३।।
वज्र का हो पात जो त्रैलोक्य को विह्वल करे।
फिर भी अरे अतिसाहसी सद्दृष्टिजन निश्चल रहें।।

निश्चल रहे निर्भय रहे निशंक निज मे ही रहे।
निसर्ग ही निजबोधवपु निज बोध से अच्युत रहे।।१५४।।
इहलोक अर परलोक से मेरा न कुछ सम्बन्ध है।
अर भिन्न पर से एक यह चिल्लोक ही मम लोक है।।
जब जानते यह ज्ञानिजन तब होंय क्यो भयभीत वे।
वे तो सतत निःशंक हो निजज्ञान का अनुभव करे।।१५५।।
चूंकि एक-अभेद मे ही वेद्य-वेदक भाव हो।
अतएव ज्ञानी नित्य ही निजज्ञान का अनुभव करे।।
अन वेदना कोइ है नही तब होय क्यो भयभीत वे।
वे तो सतत् निःशंक हो निजज्ञान का अनुभव करे।।१५६।।

निज आतमा सत् और सत् का नाश हो सकता नही।
है सदा रक्षित सत् अरक्षाभाव हो सकता नही।।
जब जानते यह ज्ञानिजन तब होंय क्यो भयभीत वे।
वे तो सतत् नि.शंक हो निजज्ञान का अनुभव करे।।१५७।।
कोई किसी का कुछ करे यह बात संभव है नही।
सब हैं सुरक्षित स्वयं मे अगुप्ति का भय है नही।।
जब जानते यह ज्ञानिजन तब होय क्यो भयभीत वे।
वे तो सतत निःशंक हो निजज्ञान का अनुभव करे।।१५८।।
मृत्यु कहे सारा जगत बस प्राण के उच्छेद को।
ज्ञान ही है प्राण मम उसका नही उच्छेद हो।।

तव मरणभय हो किस तरह हों ज्ञानिजन भयभीत क्यों।
वे तो सतत नि.शंक हो निज ज्ञान का अनुभव करें॥१५९॥
इसमें अचानक कुछ नहीं यह ज्ञान निश्चल एक है।
यह है सदा ही एकसा एवं अनादि अनंत है॥
जव जानते यह ज्ञानिजन तव होय क्यों भयभीत वे।
वे तो सतत नि:शंक हो निज ज्ञान का अनुभव करें॥१६०॥

(दोहा)

नित नि:शंक सद्दृष्टि को कर्मवंध न होय।
पूर्वोदय को भोगते सतत निर्जरा होय॥१६१॥

बंध न हो नव कर्म का पूर्व कर्म का नाश।
नृत्य करे अष्टांग मे सम्यग्ज्ञान प्रकाश।।१६२।।

बंधाधिकार

(हरिगीत)

मदमत्त हो मदमोह मे इस बंध ने नर्तन किया।
रसराग के उद्गार से सब जेगत को पागल किया।।
उदार अर आनन्दभोजी धीर निरुपधि ज्ञान ने।
अति ही अनाकुलभाव से उस बंध का मर्दन किया।।१६३।।

कर्म की ये वर्गणाएँ वंध का कारण नहीं।
अत्यन्त चंचल योग भी हैं वंध के कारण नहीं॥
करण कारण है नहीं चिद्-अचिद् हिसा भी नहीं।
वस वंध के कारण कहे अज्ञानमय रागादि ही॥१६४॥
भले ही सब कर्मपुद्गल से भरा यह लोक हो।
भले ही मन-वचन-तन परिस्पन्दमय यह योग हो॥
चिद् अचिद् का घात एवं करण का उपभोग हो।
फिर भी नहीं रागादि विरहित ज्ञानियों को वंध हो॥१६५॥
तो भी निरर्गल प्रवर्त्तन तो ज्ञानियों को वर्ज्य है।
क्योंकि निर्गल प्रवर्त्तन तो वंध का स्थान है॥

वाच्छारहित जो प्रवर्त्तन वह बंध विरहित जानिये।
जानना करना परस्पर विरोधी ही मानिये॥१६६॥
जो ज्ञानीजन है जानते वे कभी भी करते नही।
करना तो है बस राग ही जो करे वे जाने नही॥
अज्ञानमय यह राग तो है भाव अध्यवसान ही।
बंधकारण कहे ये अज्ञानियो के भाव ही॥१६७॥
जीवन-मरण अर दुक्ख-सुख सब प्राणियो के सदा ही।
अपने कर्म के उदय के अनुसार ही हो नियम से॥
करे कोई किसी के जीवन-मरण अर दुक्ख-सुख।
विविध भूलो से भरी यह मान्यता अज्ञान है॥१६८॥

करे कोई किसी के जीवन-मरण अर दुक्ख-सुख।
मानते है जो पुरुष अज्ञानमय इस बात को।।
कर्त्तृत्व रस से लबालब हैं अहंकारी वे पुरुष।
भव-भव भ्रमें मिथ्यामती अर आतमघाती वे पुरुष।।१६९।।

(दोहा)

विविध कर्म बंधन करे जो मिथ्याध्यवसाय।
मिथ्यामति निशदिन करे वे मिथ्याध्यवसाय।।१७०।।
निष्फल अध्यवसान मे मोहित हो यह जीव।
सर्वरूप निज को करे जाने सब निजरूप।।१७१।।

(रोला)

यद्यपि चेतन पूर्ण विश्व से भिन्न सदा है,
फिर भी निज को करे विश्वमय जिसके कारण।
मोहमूल वह अधवसाय ही जिसके न हो,
परमप्रतापी दृष्टिवंत वे ही मुनिवर है।।१७२।।

(आडिल्ल)

सब ही अध्यवसान त्यागने योग्य है,
यह जो बात विशेष जिनेश्वर ने कही।
इसका तो स्पष्ट अर्थ यह जानिये;
अन्याश्रित व्यवहार त्यागने योग्य है।।

परमशुद्धनिश्चयनय का जो ज्ञेय है,
शुद्ध निजातमराम एक ही ध्येय है।
यदि ऐसी है बात तो मुनिजन क्यो नही,
शुद्धज्ञानघन आतम मे निश्चल रहें॥१७३॥

(सोरठा)

कहे जिनागम मॉहि शुद्धातम से भिन्न जो।
रागादिक परिणाम कर्मबंध के हेतु वे॥
यहॉ प्रश्न अब एक उन रागादिक भाव का।
यह आतम या अन्य कौन हेतु है अब कहें॥१७४॥

अग्निरूप न होय सूर्यकान्तमणि सूर्य बिन।
रागरूप न होय यह आतम परसंग बिन।।१७५।।

(दोहा)

ऐसे वस्तुस्वभाव को जाने विज्ञ सदीव।
अपनापन ना राग मे अतः अकारक जीव।।१७६।।
ऐसे वस्तुस्वभाव को ना जाने अल्पज्ञ।
धरे एकता राग में नही अकारक अज्ञ।।१७७।।

(सवैया इकतीसा)

परद्रव्य है निमित्त परभाव नैमित्तिक,
नैमित्तिक भावो से कषायवान हो रहा।

भावीकर्मबंधन हो इन कषायभावों से,
बंधन में आतमा विलायमान हो रहा॥
इसप्रकार जान परभावों की संतति को,
जड से उखाड़ स्फुरायमान हो रहा।
आनन्दकन्द निज-आतम के वेदन में,
निजभगवान शोभायमान हो रहा॥१७८॥
बंध के जो मूल उन रागादिकभावों को,
जड से उखाडने उदीयमान हो रही।
जिसके उदय से चिन्मयलोक की,
यह कर्मकालिमा विलीयमान हो रही॥

जिसके उदय को कोई नही रोक सके,
अद्भुत शोर्य से विकासमान हो रही।
कमर कसे हुए धीर-वीर गभीर,
ऐसी दिव्यज्योति प्रकाशमान हो रही ।।१७९।।

मोक्ष अधिकार

(हरिगीत)

निज आतमा अर बंध को कर पृथक् प्रज्ञाछैनि से।
सद्ज्ञानमय निज आत्म को कर सरस परमानन्द से ।।
उत्कृष्ट है कृतकृत्य है परिपूर्णता को प्राप्त है।
प्रगटित हुई वह ज्ञानज्योति जो स्वयं मे व्याप्त है ।।१८०।।

यह चेतना दर्शन सदा सामान्य अवलोकन करे।
पर ज्ञान जाने सब विशेषों को तदपि निज मे रहे॥
अस्तित्व ही ना रहे इनके बिना चेतन द्रव्य का।
चेतना के बिना चेतन द्रव्य का अस्तित्व क्या ?
चेतन नही बिन चेतना चेतन बिना ना चेतना।
बस इसलिए हे आत्मन् ! इनमें सदा ही चेत ना॥१८३॥

(दोहा)

चिन्मय चेतनभाव है पर हैं पर के भाव।
उपादेय चिद्भाव है हेय सभी परभाव॥१८४॥

(हरिगीत)

मैं तो सदा ही शुद्ध परमानन्द चिन्मयज्योति हूँ।
सेवन करें सिद्धान्त यह सब ही मुमुक्षु बन्धुजन।।
जो विविध परभाव मुझमें दिखें वे मुझ से पृथक्।
वे मैं नहीं हूँ क्योंकि वे मेरे लिए परद्रव्य हैं।।१८५।।

(दोहा)

परग्राही अपराधिजन बाँधे कर्म सदीव।
स्व में ही संवृत्त जो वे ना बंधे कदीव।।१८६।।

(हरिगीत)

जो सापराधी निरन्तर वे कर्मबंधन कर रहे।
जो निरपराधी वे कभी भी कर्मबंधन ना करे।।
अशुद्ध जाने आतमा को सापराधी जन सदा।
शुद्धात्मसेवी निरपराधी शान्ति सेवे सर्वदा।।१८७।।
अरे मुक्तिमार्ग मे चापल्य अर परमाद को।
है नही कोई जगह कोई और आलंबन नही।।
बस इसलिए ही जबतलक आनन्दघन निज आतमा।
की प्राप्ति न हो तबतलक तुम नित्य ध्यावो आतमा।।१८८।।

(रोला)

प्रतिक्रमण भी अरे जहाँ विष-जहर कहा हो,
अमृत कैसे कहे वहाँ अप्रतिक्रमण को।।
अरे प्रमादी लोग आधो-अधः क्यों जाते है ?
इस प्रमाद को त्याग उर्ध्व में क्यों नही जाते ? ।।१८९।।

कषायभाव से आलस करना ही प्रमाद है,
यह प्रमाद का भाव शुद्ध कैसे हो सकता ?
निजरस से परिपूर्ण भाव में अचल रहे जो,
अल्पकाल मे वे मुनिवर ही बंधमुक्त हों।।१९०।।

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार

(रोला)

जिसने कर्तृ-भोक्तृभाव सब नष्ट कर दिये,
बंध-मोक्ष की रचना से जो सदा दूर है।
है अपार महिमा जिसकी टंकोत्कीर्ण जो;
ज्ञानपुंज वह शुद्धातम शोभायमान है।।१९३।।

(दोहा)

जैसे भोक्तृ स्वभाव नहीं वैसे कर्त्तृस्वभाव।
कर्त्तापन अज्ञान से ज्ञान अकारकभाव।।१९४।।

(रोला)

निजरस से सुविशुद्ध जीव शोभायमान है।
झलके लोकालोक ज्योति स्फुरायमान है ॥
अहो अकर्त्ता आतम फिर भी बंध हो रहा।
यह अपार महिमा जानो अज्ञानभाव की ॥१९५॥

(दोहा)

जैसे कर्तृस्वभाव नही वैसे भोक्तृस्वभाव।
भोक्तापन अज्ञान से ज्ञान अभोक्ताभाव ॥१९६॥

(रोला)

प्रकृतिस्वभावरत अज्ञानी हैं सदा भोगते।

प्रकृतिस्वभाव से विरत ज्ञानिजन कभी न भोगे ।।

निपुणजनो ! निजशुद्धातममय ज्ञानभाव को।

अपनाओ तुम सदा त्याग अज्ञानभाव को ।।१९७।।

(सोरठा)

निश्चल शुद्धस्वभाव, ज्ञानी करे न भोगवे।

जाने कर्मस्वभाव, इस कारण वह मुक्त है ।।१९८।।

(हरिगीत)

निज आतमा ही करे सबकुछ मानते अज्ञान से।
हों यद्यपि वे मुमुक्षु पर रहित आतमज्ञान से।।
अध्ययन करे चारित्र पालें और भक्ति करे पर।
लौकिकजनो वत उन्हे भी तो मुक्ति की प्राप्ति न हो।।१९९।।

(दोहा)

जब कोई संबंध ना पर अर आतम मांहि।
तब कर्त्ता परद्रव्य का किसविध आत्म कहाँहि।।२००।।

(रोला)

जब कोई संबंध नही है दो द्रव्यों मे,
तब फिर कर्ताकर्मभाव भी कैसे होगा ?
इसीलिए तो मैं कहता हूँ निज को जानो;
सदा अकर्त्ता अरे जगतजन अरे मुनिजन ।।२०१।।

इस स्वभाव के सहज नियम जो नही जानते,
अरे विचारे वे तो डूबे भवसागर मे।
विविध कर्म को करते है बस इसीलिए वे,
भावकर्म के कर्त्ता होते अन्य कोई ना।।२०२।।

अरे कार्य कर्त्ता के बिना नही हो सकता,

भावकर्म भी एक कार्य है सब जग जाने।

और पौद्गलिक प्रकृति सदा ही रही अचेतन;

वह कैसे कर सकती चेतन भावकर्म को।।

प्रकृति-जीव दोनो ही मिलकर उसे करे यदि,

तो फिर दोनो मिलकर ही फल क्यो ना भोगे?

भावकर्म तो चेतन का ही करे अनुसरण,

इसकारण यह जीव कहा है उनका कर्त्ता।।२०३।।

कोई कर्त्ता मान कर्म को भावकर्म का,
आतम का कर्त्तृत्व उडाकर अरे सर्वथा।
और कथंचित् कर्त्ता आतम कहनेवाली,
स्याद्वादमय जिनवाणी को कोपित करते।।
उन्ही मोहमोहितमतिवाले अल्पज्ञों के,
संबोधन के लिए सहेतुक स्याद्वादमय।
वस्तु का स्वरूप समझाते अरे भव्यजन,
अब आगे की गाथाओ मे कुन्दकुन्द मुनि।।२०४।।

अरे जैन होकर भी सांख्यो के समान ही,

इस आतम को सदा अकर्त्ता तुम मत जानो।

भेदज्ञान के पूर्व राग का कर्त्ता आतम;

भेदज्ञान होने पर सदा अकर्त्ता जानो॥२०५॥

जो कर्त्ता वह नही भोगता इस जगती मे,

ऐसा कहते कोई आतमा क्षणिक मानकर।

नित्यरूप से सदा प्रकाशित स्वयं आतमा,

मानो उनका मोह निवारण स्वयं कर रहा॥२०६॥

(सोरठा)

वृत्तिमान हो नष्ट, वृत्त्यंशो के भेद से।
कर्त्ता भोक्ता भिन्न; इस भय से मानो नहीं ॥२०७॥

(रोला)

यह आतम है क्षणिक क्योंकि यह परमशुद्ध है।
जहाँ काल की भी उपाधि की नहीं अशुद्धि॥
इसी धारणा से छूटा त्यों नित्य आतमा।
ज्यों डोरा विन मुक्तामणि से हार न वनता॥२०८॥

कर्त्ता-भोक्ता मे अभेद हो युक्तिवश से,

भले भेद हो अथवा दोनो ही न होवे।

ज्यो मणियो की माला भेदी नहीं जा सके,

त्यो अभेद आतम का अनुभव हमे सदा हो ॥२०९॥

(दोहा)

अरे मात्र व्यवहार से कर्मरु कर्त्ता भिन्न।

निश्चयनय से देखिये दोनो सदा अभिन्न ॥२१०॥

अरे कभी होता नही कर्त्ता के बिन कर्म।
निश्चय से परिणाम ही परिणामी का कर्म॥
सदा बदलता ही रहे यह परिणामी द्रव्य।
एकरूप रहती नही वस्तु की थिति नित्य॥२११॥

(रोला)

यद्यपि आतमराम शक्तियों से है शोभित।
और लोटता बाहर-बाहर परद्रव्यों के॥
पर प्रवेश पा नहीं सकेगा उन द्रव्यों मे।
फिर भी आकुल-व्याकुल होकर क्लेश पा रहा॥२१२॥

एक वस्तु हो नही कभी भी अन्य वस्तु की।
वस्तु वस्तु की ही है–ऐसा निश्चित जानो।।
ऐसा है तो अन्य वस्तु यदि बाहर लोटे।
तो फिर वह क्या कर सकती है अन्य वस्तु का।।२१३।।

स्वयं परिणमित एक वस्तु यदि परवस्तु का।
कुछ करती है–ऐसा जो माना जाता है।।
वह केवल व्यवहारकथन है निश्चय से तो।
एक दूसरे का कुछ करना शक्य नही है।।२१४।।

एक द्रव्य मे अन्य द्रव्य रहता हो – ऐसा।
भासित कभी नहीं होता है ज्ञानिजनो को॥
शुद्धभाव का उदय ज्ञेय का ज्ञान, न जाने।
फिर भी क्यों अज्ञानीजन आकुल होते हैं॥२१५॥

शुद्धद्रव्य का निजरसरूप परिणमन होता।
वह पररूप या पर उसरूप नहीं हो सकते॥
अरे चॉदनी की ज्यों भूमि नही हो सकती।
त्यो ही कभी नही हो सकते ज्ञेय ज्ञान के॥२१६॥

तबतक राग-द्वेष होते है जबतक भाई।
ज्ञान-ज्ञेय का भेद ज्ञान मे उदित नही हो।।
ज्ञान-ज्ञेय का भेद समझकर राग-द्वेष को,
मेट पूर्णतः पूर्ण ज्ञानमय तुम हो जावो।।२१७।।

यही ज्ञान अज्ञानभाव से राग-द्वेषमय।
हो जाता पर तत्त्वदृष्टि से वस्तु नही ये।।
तत्त्वदृष्टि के बल से क्षयकर इन भावो को।
होजाती है अचल सहज यह ज्योति प्रकाशित।।२१८।।

तत्त्वदृष्टि से राग-द्वेष भावो का भाई।
कर्त्ता-धर्त्ता कोई अन्य नही हो सकता।।
क्योकि है अत्यन्त प्रगट यह बात जगत मे।
द्रव्यो का उत्पाद स्वयं से ही होता है।।२१९।।

राग-द्वेष पैदा होते है इस आतम मे।
उसमे परद्रव्यो का कोई दोष नही है।।
यह अज्ञानी अपराधी है इनका कर्त्ता।
यह अबोध हो नष्ट कि मैं तो स्वयं ज्ञान हूँ।।२२०।।

राग-द्वेष से रहित भूत-भावी कर्मों से मुक्त।
स्वयं को वे नित ही अनुभव करते है।।
और स्वयं में रत रह ज्ञानमयी चेतनता।
को धारण कर निज में नित्य मगन रहते हैं।।२२३।।
ज्ञान चेतना शुद्ध ज्ञान को करे प्रकाशित।
शुद्धज्ञान को रोके नित अज्ञान चेतना।।
और बंध की कर्त्ता यह अज्ञान चेतना।
यही जान चेतो आतम नित ज्ञान चेतना।।२२४।।
भूत भविष्यत वर्तमान के सभी कर्म कृत।
कारित अर अनुमोदनादि में सभी ओर से।।

नष्ट हो गया मोहभाव जिसका ऐसा मैं।

करके प्रत्याख्यान भाविकर्मो का अब तो।।

वर्त रहा हूँ अरे निरन्तर स्वयं स्वयं के।

शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम निष्कर्म आत्म मे।।२२८।।

तीन काल के सब कर्मो को छोड इसतरह।

परमशुद्धनिश्चयनय का अवलम्बन लेकर।।

निर्मोही हो वर्त रहा हूँ स्वयं स्वयं के।

शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम निष्कर्म आत्म मे।।२२९।।

कर्म वृक्ष के विषफल मेरे बिन भोगे ही।

खिर जाये बस यही भावना भाता हूँ मैं।।

क्योकि मै तो वर्त रहा हूॅ स्वयं स्वयं के।

शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम निष्कर्म आत्म मे।।२३०।।

सब कर्मो के फल से सन्यासी होने से।

आतम से अतिरिक्त प्रवृत्ति से निवृत्त हो।।

चिद्‌लक्षण आतम को अतिशय भोग रहा हूॅ।

यह प्रवृत्ति ही बनी रहे बस अमित इस काल तक।।२३१।।

(वसततिलका)

रे पूर्वभावकृत कर्मजहरतरु के।

अज्ञानमय फल नही जो भोगते है।।

अर तृप्त स्वयं में चिरकाल तक वे।

निष्कर्म सुखमय दशा को भोगते है॥२३२॥

रे कर्मफल से सन्यास लेकर।

सद्ज्ञान चेतना को निज में नचाओ॥

प्याला पियो नित प्रशमरस का निरन्तर।

सुख मे रहो अभी से चिरकालतक तुम॥२३३॥

(दोहा)

अपने मे ही मगन है अचल अनाकुल ज्ञान।

यद्यपि जाने ज्ञेय को तदपि भिन्न ही जान॥२३४॥

(हरिगीत)

है अन्य द्रव्यों से पृथक् विरहित ग्रहण अर त्याग से।
यहज्ञाननिधि निज में नियत वस्तुत्व को धारण किये ।।
है आदि-अन्त विभाग विरहित स्फुरित आनन्दघन।
हो सहज महिमाप्रभाभास्वर शुद्ध अनुपम ज्ञानघन ।।२३५।।

जिनने समेटा स्वयं ही सब शक्तियो को स्वयं मे।
सब ओर से धारण किया हो स्वयं को ही स्वयं में ।।
मानो उन्ही ने त्यागने के योग्य जो वह तज दिया।
अर जो ग्रहण के योग्य वह सब भी उन्ही ने पा लिया ।।२३६ ।।

(सोरठा)

ज्ञानस्वभावी जीव परद्रव्यो से भिन्न ही।
कैसे कहे सदेह जब आहारक ही नही।।२३७।
शुद्धज्ञानमय जीव, के जब देह नहीं कही।
तब फिर यह द्रवलिंग, शिवमग कैसे हो सके।।२३८।।

(दोहा)

मोक्षमार्ग बस एक ही रत्नत्रयमय होय।
अतः मुमुक्षु के लिए वह ही सेवन योग्य।।२३९।।

(हरिगीत)

दृगज्ञानमय वृत्त्यात्मक यह एक ही है मोक्षपथ।
थित रहे अनुभव करे अर ध्यावे अहिर्निश जो पुरुष ।।
जो अन्य को न छुये अर निज मे विहार करें सतत।
वे पुरुष ही अतिशीघ्र ही समैसार को पावे उदित ।।२४० ।।
जो पुरुष तज पूर्वोक्त पथ व्यवहार मे वर्तन करे।
तर जायेगे यह मानकर द्रव्यलिंग मे ममता धरे।।
वे नही देखे आतमा निज अमल एक उद्योतमय।
अर अखण्ड अभेद चिन्मय अज अतुल आलोकमय ।।२४१।।

तुष मॉहि मोहित जगतजन ज्यो एक तुप ही जानते।
वे मूढ तुष संग्रह करे तन्दुल नहीं पहिचानते॥
व्यवहारमोहित मूढ त्यो व्यवहार को ही जानते।
आनन्दमय सद्ज्ञानमय परमार्थ नहीं पहिचानते॥२४२॥

यद्यपी परद्रव्य हैं द्रवलिग फिर भी अजज्ञन।
वस उसी मे ममता धरे द्रवलिग मोहित अन्धजन॥
देखें नहीं जाने नही सुखमय समय के सार को।
वस इसलिए ही अज्ञजन पाते नही भवपार को॥२४३॥

क्या लाभ है ऐसे अनल्प विकल्पो के जाल से।
बस एक ही है बात यह परमार्थ का अनुभव करो।।
क्योकि निजरसभरित परमानन्द के आधार से।
कुछ भी नही है अधिक सुन लो इस समय के सार से।।२४४।।

(दोहा)

ज्ञानानन्दस्वभाव को करता हुआ प्रत्यक्ष।
अरे पूर्ण अब हो रहा यह अक्षय जगचक्षु।।२४५।।
इसप्रकार यह आतमा अचल अबाधित एक।
ज्ञानमात्र निश्चित हुआ जो अखण्ड स्वसंवेद्य।।२४६।।

परिशिष्ट

(कुण्डलिया)

यद्यपि सब कुछ आ गया कुछ भी रहा न शेष।
फिर भी इस परिशिष्ट मे सहज प्रमेयविशेष।।
सहज प्रमेय विशेष उपायोपेय भावमय।
ज्ञानमात्र आतम समझाते स्याद्वाद से।।
परमव्यवस्था वस्तुतत्त्व की प्रस्तुत करके।
परमज्ञानमय परमातम का चिन्तन करते।।२४७।।

(हरिगीत)

बाह्यार्थ ने ही पी लिया निजव्यक्तता से रिक्त जो।
वह ज्ञान तो सम्पूर्णतः पररूप मे विश्रान्त है॥
पर से विमुख हो स्वोन्मुख सद्ज्ञानियों का ज्ञान तो।
'स्वरूप से ही ज्ञान है'–इस मान्यता से पुष्ट है॥२४८॥

इस ज्ञान मे जो झलकता वह विश्व ही बस ज्ञान है।
अबुध ऐसा मानकर स्वच्छन्द हो वर्तन करे॥
अर विश्व को जो जानकर भी विश्वमय होते नहीं।
वे स्याद्वादी जगत मे निजतत्त्व का अनुभव करें॥२४९॥

छिन-भिन्न हो चहुँ ओर से बाह्यार्थ के परिग्रहण से॥
खण्ड-खण्ड होकर नष्ट होता स्वयं अज्ञानी पशु।
एकत्व के परिज्ञान से भ्रमभेद जो परित्याग दे।
वे स्याद्वादी जगत मे एकत्व का अनुभव करे॥२५०॥

जो मैल ज्ञेयाकार का धो डालने के भाव से।
स्वीकृत करे एकत्व को एकान्त से वे नष्ट हों॥
अनेकत्व को जो जानकर भी एकता छोड़े नहीं।
वे स्याद्वादी स्वतःक्षालित तत्त्व का अनुभव करे॥२५१॥

इन्द्रियो से जो दिखे ऐसे तनादि पदार्थ मे।
एकत्व कर हो नष्ट जन निजद्रव्य को देखे नही।।
निजद्रव्य को जो देखकर निजद्रव्य मे ही रत रहे।
वे स्याद्वादी ज्ञान से परिपूर्ण हो जीवित रहे।।२५२।।

सब द्रव्यमय निज आतमा यह जगत की दुर्वासना।
बस रत रहे परद्रव्य मे स्वद्रव्य के भ्रमबोध से।।
परद्रव्य के नास्तित्व को स्वीकार सब द्रव्य मे।
निजज्ञान बल से स्याद्वादी रत रहें निजद्रव्य मे।।२५३।।

परक्षेत्रव्यापीज्ञेय-ज्ञायक आतमा परक्षेत्रमय।
यह मानकर निजक्षेत्र का अपलाप करते अज्ञजन॥
जो जानकर परक्षेत्र को परक्षेत्रमय होते नहीं।
वे स्याद्वादी निजरसी निजक्षेत्र में जीवित रहें॥२५४॥

मैं ही रहूँ निजक्षेत्र में इस भाव से परक्षेत्रगत।
जो ज्ञेय उनके साथ ज्ञायकभाव भी परित्याग कर॥
हों तुच्छता को प्राप्त शठ पर ज्ञानिजन परक्षेत्रगत।
रे छोडकर सब ज्ञेय वे निजक्षेत्र को छोडे नहीं॥२५५॥

निजज्ञान के अज्ञान से गतकाल मे जाने गये।
जो ज्ञेय उनके नाश से निज नाश माने अज्ञजन।।
नष्ट हो परज्ञेय पर ज्ञायक सदा कायम रहे।
निजकाल से अस्तित्व है—यह जानते है विज्ञजन।।२५६।।

अर्थालम्बनकाल मे ही ज्ञान का अस्तित्व है।
यह मानकर परज्ञेयलोभी लोक में आकुल रहे।।
परकाल से नास्तित्व लखकर स्याद्वादी विज्ञजन।
ज्ञानमय आनन्दमय निज आतमा मे दृढ रहे।।२५७।।

परभाव से निजभाव का अस्तित्व माने अज्ञजन।
पर में रमे जग में भ्रमे निज आतमा को भूलकर॥
पर भिन्न हो परभाव से ज्ञानी रमे निजभाव मे।
बस इसलिए इस लोक मे वे सदा ही जीवित रहे॥२५८॥

सब ज्ञेय ही हैं आतमा यह मानकर स्वच्छन्द हो।
परभाव मे ही नित रमे बस इसलिए ही नष्ट हो॥
पर स्याद्वादी तो सदा आरूढ है निजभाव मे।
विरहित सदा परभाव से विलसे सदा निष्कम्प हो॥२५९॥

(दोहा)

मूढजनो को इसतरह ज्ञानमात्र समझाय।
अनेकान्त अनुभूति मे उतरा आतमराय।।२६२।।
अनेकान्त जिनदेव का शासन रहा अलंघ्य।
वस्तुव्यवस्था थापकर थापित स्वयं प्रसिद्ध।।२६३।।

(रोला)

इत्यादिक अनेक शक्ति से भरी हुई है।
फिर भी ज्ञानमात्रमयता को नही छोडती।।
और क्रमाक्रमभावो से जो मेचक होकर।
द्रव्य और पर्यायमयी चिद्वस्तु लोक मे।।२६४।।

अनेकान्त की दिव्यदृष्टि से स्वयं देखते।
वस्तुतत्त्व की उक्त व्यवस्था अरे सन्तजन।।
स्याद्वाद की अधिकाधिक शुद्धि को लख अर।
नही लांघकर जिननीति को ज्ञानी होते।।२६५।।

(वसततिलका)

रे ज्ञानमात्र निज भाव अकंपभूमि।
को प्राप्त करते जो अपनीतमोही।।
साधकपने को पा वे सिद्ध होते।
अर अज्ञ इसके बिना परिभ्रमण करते।।२६६।।

स्याद्वादकौशल तथा संयम सुनिश्चिल।
से ही सदा जो निज में जमे हैं॥
वे ज्ञान एवं क्रिया की मित्रता से।
सुपात्र हो पाते भूमिका को॥२६७॥

उदितप्रभा से जो सुप्रभात करता।
चित्पिण्ड जो है खिला निज रमणता से॥
जो अस्खलित है आनन्दमय वह।
होता उदित अद्भुत अचल आतम॥२६८॥

महिमा उदित शुद्धस्वभाव की नित।
स्याद्वाददीपित लसत् सद्ज्ञान मे जब।।
तब बंध-मोक्ष मग मे आपतित भावो।
से क्या प्रयोजन है तुम ही बताओ।।२६९।।

निज शक्तियो का समुदाय आतम।
विनष्ट होता नयदृष्टियो से।।
खंड-खंड होकर खण्डित नहीं मैं।
एकान्त शान्त चिन्मात्र अखण्ड हूॅ मै।।२७०।।

(रोला)

परज्ञेयों के ज्ञानमात्र मै नही जिनेश्वर।
मै तो केवल ज्ञानमात्र हूँ निश्चित जानो॥
ज्ञेयों के आकार ज्ञान की कल्लोलो से।
परिणत ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयमय वस्तुमात्र हूँ॥२७१॥

अरे अमेचक कभी कभी यह मेचक दिखता।
कभी मेचकामेचक यह दिखाई देता है॥
अनंत शक्तियो का समूह यह आतम फिर भी।
दृष्टिवत को भ्रमित नही होने देता है॥२७२॥

(सोरठा)

झलके तीनो लोक सहज तेज के पुंज मे।
यद्यपि एक स्वरूप तदपी भेद दिखाई दे।।
सहज तत्त्व उपलब्धि निजरस के विस्तार से।
नियत ज्योति चैतन्य चमत्कार जयवंत है।।२७५।।

(दोहा)

मोह रहित निर्मल सदा अप्रतिपक्षी एक।
अचल चेतनारूप मे मग्न रहे स्वयमेव।।
परिपूरण आनन्दमय अर अद्भुत उद्योत।
सदा उदित चहुँ ओर से अमृचन्द्रज्योति।।२७६।।

(हरिगीत)

गतकाल मे अज्ञान से एकत्व पर से जब हुआ।
फलरूप मे रस-राग अर कर्तृत्व पर मे तब हुआ॥
उस क्रियाफल को भोगती अनुभूति मैली हो गई।
किन्तु अब सद्ज्ञान से सब मलिनता लय हो गई॥२७७॥
ज्यो शब्द अपनी शक्ति से ही तत्त्व प्रतिपादन करे।
त्यो समय की यह व्याख्या भी उन्ही शब्दो ने करी॥
निजरूप मे ही गुप्त अमृतचन्द्र श्री आचार्य का।
इस आत्मख्याति मे अरे कुछ भी नही कर्तृत्व है॥२७८॥

मै ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ

-डॉ हुकमचन्द भारिल्ल

मैं हू अपने में स्वय पूर्ण, पर की मुझ में कुछ गन्ध नहीं।
मैं अरस अरूपी अस्पर्शी, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं॥
मैं रग-राग से भिन्न, भेद से भी मैं भिन्न निराला हूं।
में हूं अखण्ड चैतन्यपिण्ड, निज रस में रमने वाला हूं॥
मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता, मुझ में पर का कुछ काम नहीं।
मैं मुझ मे रहने वाला हूं, पर में मेरा विश्राम नहीं॥
मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध, एक, पर-परिणति से अप्रभावी हूं।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व, मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूं॥